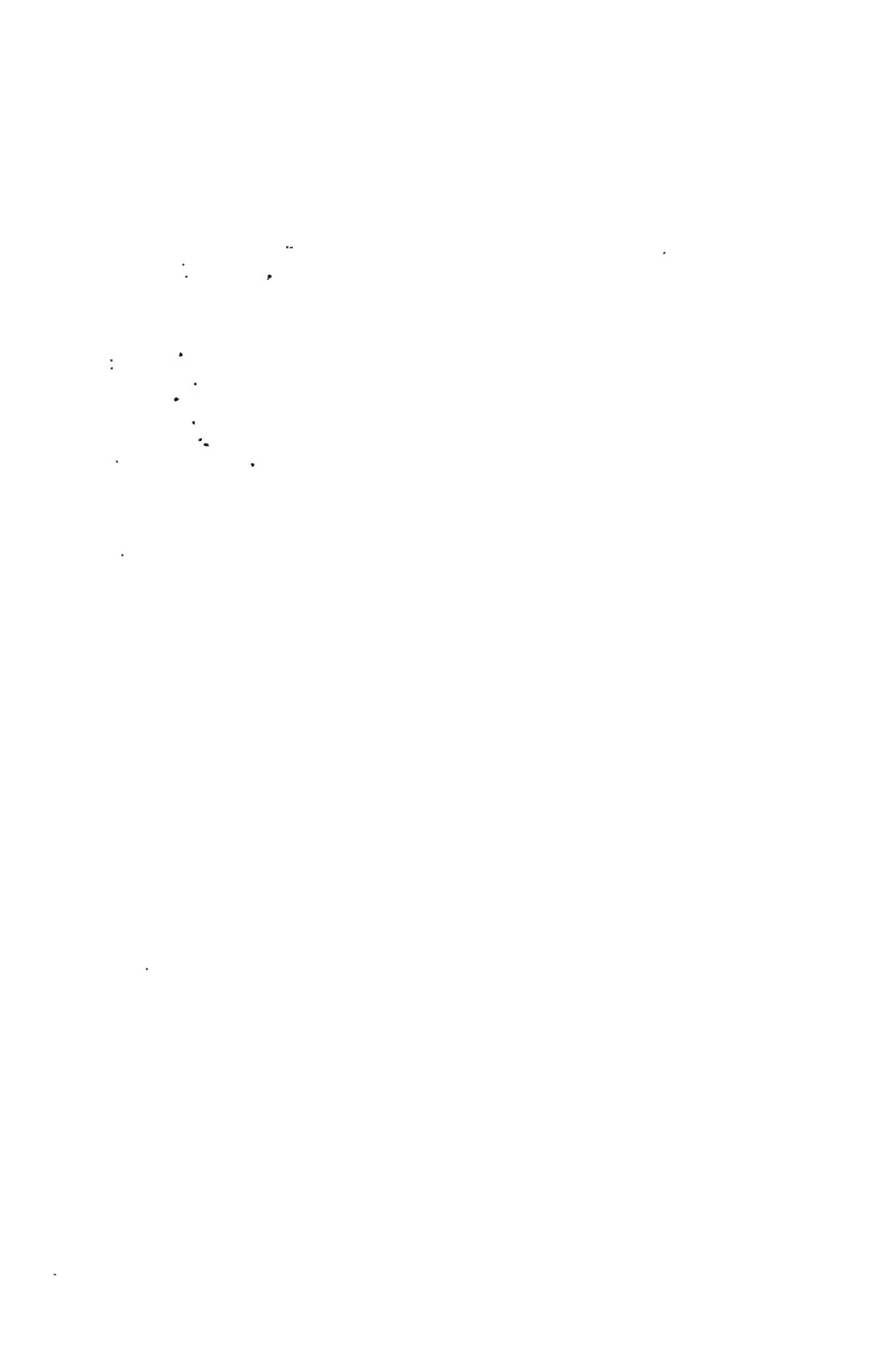


दिया। आपके समान देशभक्त कहां मिलेगा ?
जब भाग्य ही बुरा हो तो दुःख करना बेकार है।

महाराणा प्रताप—वीर सैनिक ! अब मैं अपनी मातृ-भूमि पर यवनों का और अत्याचार नहीं देख सकता। इस लिए अब यहां से चले जाने के सिवा चारा भी क्या है ? चलो देर करना खतरे से खाली नहीं है।

[महाराणा प्रताप और उन के साथियों ने चलने के लिए कदम उठाया ही था कि दूर से आते हुए भामाशाह दिखाई दिए]

भामाशाह—(नेपथ्य से) हे मेवाड़-मुकुट । तनिक ठहरिए और मेरी एक प्रार्थना सुनने की कृपा कीजिए ।

महाराणा प्रताप—(रुक कर) अरे ये तो स्वयं भामा-शाह आ रहे हैं ! जरा ठहरें। देखें वह क्या संदेश लाए हैं। (सभी साथी रुक जाते हैं)

(महाराणा प्रताप के चरणों में प्रणाम करते हैं और महाराणा प्रताप उन को उठा कर गले से लगा लेते हैं)

महाराणा प्रताप—मंत्रीवर, आप इतने व्याकुल क्यों ...आप की आंखों में आंसू क्यों ?



शकुन प्रकाशन
३६८५ नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली

दूसरी बार १९६५

मूल्य : साठ पैसे

मुद्रक :
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली-६

दो शब्द

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कुछ ऐसी हवा चली कि सारा ध्यान इसी पर लग गया कि उत्पादन बढ़ाओ, इंजीनियर, डॉक्टर और ट्रैक्टर पैदा करो। फल यह हुआ कि शिक्षा पैसा कमाने मात्र के उद्देश्य से दी जाने लगी। इस बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया कि बच्चों को जब तक सदाचारी नहीं बनाया जाएगा और मानवता के आधारभूत सिद्धान्त नहीं समझाए जाएंगे, तब तक न तो वे अच्छे नागरिक बन सकेंगे और न सही मानों में राष्ट्रनिर्माता। चरित्रवान नागरिक नहीं होंगे तो भ्रष्टाचार, चोरी, ठगी, मुनाफाखोरी और हिंसा आदि समाज के कलंकों का बोलबाला रहेगा और राष्ट्रोन्नति की योजनाएं थोथी रह कर एक ओर धरी रह जाएंगी।

मैं जब जैन हायर सेकेंड्री स्कूल दरियागंज का मैनेजर चुना गया तो मुझे सदाचार शिक्षा का अभाव बुरी तरह खटका और एक वर्ष के प्रयत्न के बाद यह पुस्तक प्रस्तुत करने में सफल हुआ हूं।

चूंकि दर्शन सम्बन्धी मेरा ज्ञान नगण्य था अतएव मूल सामग्री पं० सुमेर चन्द शास्त्री न्यायतीर्थ ने बड़ी लगन से संकलित की और फिर भरसक मैंने उसे सरल भाषा में स्कूल के विद्यार्थियों के योग्य शैली में पुनः लिखने का प्रयास किया है। शिक्षक इस सामग्री को उदाहरणों व कथाओं का सहारा

लेकर और भी रोचक बना सकते हैं। यदि सप्ताह में एक बार ही इस विषय की क्लास ली जाए तो एक वर्ष में सुविधा से यह कोर्स पूरा हो जाएगा। आवश्यकता इस बात की भी है कि इस विषय पर विशेष पुरस्कार घोषित कर के बच्चों को इस का गंभीर अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

स्पष्ट है कि धार्मिक दृष्टिकोण से इस पुस्तक का आधार एकांगी है परन्तु यह कोई नियम नहीं है कि यदि एक बात सत्य है तो और कुछ सत्य हो ही नहीं सकता अथवा यदि कुछ बातें अच्छी हैं तो और कुछ अच्छा हो ही नहीं सकता। इस लिए, उद्गम चाहे जो हो, जो गुण कल्याणकारी हों, वे सर्वग्राह्य होने ही चाहिएं। पाठकों से इस ओर उदारता की मैं सविनय प्रार्थना करता हूं। प्रसिद्ध साहित्यकार श्री मन्मथनाथ गुप्त ने भूमिका लिखने की कृपा की है, मैं उन का अनुग्रहीत हूं।

दिल्ली-५ मई, १९६४ —महेन्द्र सेन

विषय-सूची

भूमिका

धर्म क्या है और क्या नहीं है, इस सम्बन्ध में धार्मिक लोगों में भी बड़ा मतभेद है। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि जो केवल अपने लिए जीता है, उस का जीवन घटिया है। इस के विपरीत जो लोग दूसरों के लिए जीते हैं, वे महान हैं।

केवल धन या समृद्धि अपने में अन्तिम लक्ष्य नहीं हो सकते। जीवन का प्रतिमान बढ़ने के साथ-साथ हमें यह भी बुद्धि आनी चाहिए कि हम बढ़ी हुई सुविधाओं का किस प्रकार उपयोग करें। इसी को नैतिक बुद्धि कहते हैं। सब का वेतन बढ़े, पर बढ़ा हुआ वेतन किस काम आए, अच्छी पुस्तकें खरीदने में या नशे की चीजें खरीदने में। इन्हीं बातों को समझने और जानने के लिए अच्छा साहित्य पढ़ना चाहिए, अच्छे लोगों का साथ करना चाहिए। इस नाते मैं इस साहित्य का स्वागत करता हूं।

—मन्मथनाथ गुप्त

धर्म क्या है ?

"वस्तु सहाओ धम्मों"

वस्तु का स्वभाव ही उसका धर्म है। जैसे आग का स्वभाव जलाना है और वही उस का धर्म है, या पानी का स्वभाव शीतल है तो वही उस का धर्म है। इसी तरह आत्मा का स्वभाव ज्ञान है और वही उस का धर्म है। धर्म वही है जो आदमी को ठीक रास्ते पर ले जाए और उस को सुख और शान्ति पहुंचाने में सहायता दे।

धर्म के तीन अंग हैं :

(१) सम्यक दर्शन अर्थात् ठीक बातों पर विश्वास और भक्ति।

(२) सम्यक ज्ञान अर्थात् किसी भी चीज का ठीक और सही ज्ञान।

(३) सम्यक चरित्र यानि सम्यक दर्शन और सम्यक ज्ञान से जानी गई ठीक बातों पर चलना या उन के अनुसार अपने चरित्र को बनाना।

इस प्रकार धर्म केवल किसी देवी-देवता की पूजा से या यन्त्र मन्त्र से या तीर्थ स्नान से पूरा नहीं होता बल्कि सच्चा धर्म तो वह है जो आदमी के रहन-सहन चरित्र सभी को हर तरह से सही रास्ते पर लगाए, उस को अच्छा नागरिक बनाए और उस की आत्मा को शान्ति पहुंचाए।

सुख और शान्ति किस में है ? क्या अच्छा भोजन करने में है ? अगर ऐसा है तो किसी आदमी को चौबीस घंटे अच्छा भोजन ही खिलाते रहो तो क्या वह सुखी होगा ? थोड़ी देर के बाद ही उस का पेट अफर जाएगा और वह कहेगा कि मेरा खाना बन्द करो यह तो मुझे दुःख दे रहा है। कैसा भी स्वादिष्ट क्यों न हो अब और मैं नहीं खा सकता। इसी तरह क्या सिनेमा देखने में सुख है ? अगर किसी को चौबीस घण्टे सिनेमा ही दिखाए जाए तो सोचो उसका क्या हाल होगा।

परन्तु क्या तुम ने कभी सुना है कि किसी को ज्यादा ज्ञान प्राप्त हो जाने से बदहजमी हो गई हो ? आदमी जितना ज्ञान बढ़ाता है उस को उतना ही सुख मिलता है और ज्यादा ज्ञानी पुरुष ही दूसरों से बड़ा और अच्छा समझा जाता है।

जिन को साधारण दुनिया में ऐशो आराम की चीज

समझा जाता है वह हमारे शरीर को थोड़ी देर को तो सुख पहुंचाते मालूम पड़ते हैं लेकिन फिर वही अशान्ति पैदा हो जाती है। जो रास्ता सच्चे सुख और शान्ति यानि ज्ञान की तरफ ले जाए वही धर्म है।

एक बात और—जैसे तुम सुख और शान्ति चाहते हो, वैसे ही और लोग भी सुख और शान्ति चाहते हैं। यदि तुम ने कोई ऐसा काम किया जिससे किसी दूसरे को दुःख पहुंचा तो वह भी अधर्म है। धर्म का सही मतलब है कि तुम्हें भी सुख पहुंचे और दुनिया के सब जीवों को भी सुख पहुंचे।



सत्संगति से लाभ : कुसंगति से हानि

"महापुरुषों का
संसर्ग किस के लिए
उन्नति कारक नहीं होता
कमल के पत्ते पर गिरा हुआ
पानी मोती की शोभा पाता है"

जैसे उपजाऊ जमीन होती है वैसे ही बचपना होता है। जैसा बीज जमीन में बोया जाएगा वैसे ही पेड़ लगेंगे और उनमें वैसे ही फल लगेंगे। इसी प्रकार बच्चों का साथ या संगति जैसें लोगों के साथ होगी वैसे ही गुण उनमें पैदा होंगे। वही पानी की बूंद कमल के पत्ते का साथ पाकर मोती का रूप पाती है, वही बूंद यदि जलते हुए लोहे पर डाल दी जाए तो भस्म हो जाती है।

इसी तरह जो बच्चे अच्छे काम करने वाले बच्चों के साथ रहते हैं उनमें अच्छी आदतें पड़ती हैं और वे अच्छी बातें सीखते हैं और जो बुरे काम करने वाले

लोगों के साथ रहते हैं उन में उन्हीं के जैसे बुरे काम करने की आदतें पड़ जाती हैं और वे अपनी जिन्दगी बिगाड़ लेते हैं। इस लिए बच्चों को बुरी आदतों वाले बच्चों से या बुरे काम करने वाले लोगों से सदा दूर रहना चाहिए।

सत्संग का मतलब है अच्छे काम करने वालों से दोस्ती रखना, उन के साथ रहना। किसी काम को सीखने की दो रीतियां हैं। या तो हम दूसरे लोगों से कोई बात सीखते हैं या किताबें पढ़ कर। इनमें भी उन बातों का प्रभाव बच्चों पर ज्यादा पड़ता है जो वह दूसरे लोगों को करते हुए देखते हैं। बिना जाने ही बच्चा जो कुछ देखता है उन को वैसा ही करने की कोशिश करता है। अगर वह बुरे आदमियों के संग रहा तो उस का वही हाल होता है जो गंदी हवा में रहने वाले का होता है यानि उस को भी वही बीमारी लग जाती है जिस के कीटाणु उस गंदी हवा में होते हैं। अगर वह साफ हवा में रहेगा तो वह उस बीमारी से बचा रहेगा।

बुरी संगति बीमारी से भरी बदबूदार हवा के समान है जो बच्चे उसमें रहेंगे उनके चरित्र को जरूर तरह-तरह की बीमारियां लगेंगी। कुछ बच्चे

यह घमण्ड कर बैठते हैं कि हम तो अपने मन के पक्के हैं हमारे ऊपर दूसरों का कोई असर नहीं पड़ता। यह बात बिल्कुल गलत है। बार-बार रस्सी की रगड़ से पत्थर में भी निशान पड़ जाता है। बार-बार अच्छी बातें सुनने को मिलेंगी तो अच्छे बनोगे और बुरी बातें सुनते रहोगे तो बुरे ही बनोगे। कहावत है कि—

"काजल की कोठरी में कैसो हू सयानो जाए,
एक लीक काजर की लागि है पै लागि है"

अर्थात् ऐसी कोठरी में जो बिल्कुल काजल से भरी है कितना ही होशियार आदमी क्यों न घुसे उस के थोड़ी बहुत स्याही जरूर लगेगी। इस लिए कुसंगति की काजल की कोठरी से दूर रहना ही अच्छे बच्चों का काम है।



भारत में धर्म के आदि प्रवर्त्तक

ऋषभ देव अयोध्या
के राजा नाभिराय के
पुत्र थे। उनकी माता
का नाम मरुदेवी था।
जिस समय उनका जन्म
हुआ उस समय तक संसार
में कल्पवृक्ष होते थे। आदमी
की हर आवश्यकता को कल्पवृक्ष
पूरी करते थे। परन्तु भगवान ऋषभ देव के जन्म के
कुछ दिन बाद ही कल्पवृक्ष सूखने लगे। तब जनता को
यह चिन्ता हुई कि अब भोजन, पानी, वस्त्र, इत्यादि
कैसे मिलेगा।

जनता को दुखी देख कर भगवान ऋषभ देव ने
उन को भोजन के लिए खेती करके अनाज पैदा करना
सिखाया। शत्रु से अपनी रक्षा करने के लिए अस्त्र-
शस्त्र चलाना सिखाया। जिस से जनता बुद्धिमान बने,

उन्हों ने लिखने-पढ़ने और विद्या सीखने की व्यवस्था की। पशुपालन के द्वारा दूध, दही, घी इत्यादि पैदा करना सबसे पहले मनुष्य को भगवान ऋषभदेव ने ही सिखाया। व्यापार, शिल्प और सेवा कर के अपना पालन करना भी मनुष्य ने सबसे पहले तभी सीखा। इस तरह उन्हों ने कठिनाई में पड़ी हुई जनता को जीवित रहने के साधन दिखाए और इसी कारण उन को प्रजापति कहा जाता है।

समाज में जो जैसा कार्य करता है उसके अनुसार ही भगवान ऋषभदेव ने प्रजा को चार भागों में बांटा जो विद्याध्यन करते थे और अन्य लोगों को भी पढ़ना लिखना सिखाते थे उन को ब्राह्मण कहा जाता था और जो अस्त्र-शस्त्र में कुशल बन कर देश की रक्षा करनें के लिए अपनी जान तक देने के लिए तैयार रहते थे उन को क्षत्री कहा जाता था। इसी प्रकार जो लोग व्यापार करते थे उन को वैश्य तथा जो केवल सेवा करने के ही योग्य होते थे उन को शूद्र कहा गया।

जैन लोग भगवान ऋषभदेव को अपने धर्म का चलाने वाला मानते हैं और इसीलिए उन को आदिनाथ भी कहा जाता है। वे २४ तीर्थंकरों में सव से पहले तीर्थंकर थे। हिन्दू पुराणों में भी जिन २४ अवतारों

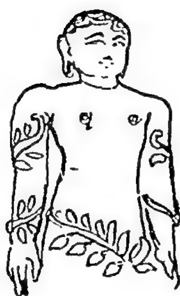
का नाम है उन में भगवान ऋषभदेव को आठवां अव-तार वताया गया है।

भगवान ऋषभदेव की नन्दा और सुनन्दा नाम की दो रानियां थीं और उन के अनेक पुत्र-पुत्रियां हुई। उन में से सबने बड़े पुत्र भरत, जो रानी नन्दा के पुत्र थे, सारे भारत को जीत कर चक्रवर्ती राजा हुए और उन्हीं के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। दूसरे पुत्र, जो रानी सुनन्दा के पुत्र थे, घोर तपस्या कर के मोक्ष गए। उन को एक ५७ फुट ऊंची प्रतिमा मैसूर राज्य के श्रवणवेलगोल नामक गांव में एक पहाड़ी पर बनी हुई है। इस प्रतिमा को गोमटेश्वर भी कहते हैं। यह संसार की सब से सुन्दर प्रतिमाओं में गिनी जाती है और सारी दुनिया से यात्री उसे देखने के लिए आते हैं।

भगवान ऋषभदेव के राज्य में प्रजा बड़े सुख से रहती थी। एक दिन की बात है कि एक लड़की जिस का नाम नीलांजना था, दरबार में नाचते-नाचते अकस्मात् मर गई। उसकी मृत्यु से भगवान ऋषभदेव को बड़ा दुःख हुआ और वह समझ गए कि यह संसार असार है और इससे छुटकारा पाने का रास्ता ढूंढ़ना चाहिए। इसलिए भगवान ऋषभदेव राजपाट अपने

पुत्र भरत को सौंप कर मुनि हो गए और घोर तपस्या करके उन्होंने सब से ऊंचा ज्ञान जिसे केवल ज्ञान कहते हैं प्राप्त किया और फिर सब जीवों को उपदेश दिया। वह जिस भाषा में बोलते थे उस को मनुष्य, पशु-पक्षी, आदि सब अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते थे।

उस के बाद जब उनकी आयु पूरी हो गई तो उन को मोक्ष हुआ और वह पहले तीर्थंकर कहलाए।



भोजन की पवित्रता

भोजन हम इसलिए करते हैं कि हमारा शरीर और उस के सब अंग ठीक-ठीक काम करें और वे दुर्बल न हों। अच्छा स्वास्थ्य अच्छे भोजन पर निर्भर है। शरीर का स्वस्थ होना तथा मन शुद्ध होना दोनों ही बातें अच्छा और शुद्ध भोजन करने पर निर्भर हैं। कहा भी है "जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन।" संसार में सब जीवों के लिए उन के शरीर की बनावट के अनुसार अलग-अलग भोजन बना है। हमारे देश में मनुष्य के लिए अन्न, दूध, फल और शाक हैं। यह वस्तुएं हमारी जलवायु, हमारे स्वभाव व शरीर की रचना के अनुसार सब से अच्छे समझे जाते हैं। इन से न केवल हमारे शरीर के अंग प्रत्यंग सब तरह से बलशाली होते हैं बल्कि हमारी बुद्धि भी तेज होती है और मन भी साफ होता है।

नहा-धोकर, हाथ-पैर साफ कर के, ऐसे वातावरण में भोजन करना चाहिए जहां शान्ति हो और प्रेम से परिवार व मित्रों के साथ भोजन किया जा सके। प्रेम से खाया रूखा-सूखा भोजन भी स्वादिष्ट लगता है। विदुर का प्रेम से खिलाया हुआ साग भी श्रीकृष्ण ने कितना स्वाद ले कर खाया था। भोजन करने में कभी जल्दी नहीं करनी चाहिए। अच्छी तरह चबा-चबा कर भोजन करना चाहिए। भोजन करने के बाद तुरन्त काम में नहीं लगना चाहिए, इस से भोजन अच्छी तरह नहीं पचता। और भोजन कर के तुरन्त सो जाना तो बहुत ही हानिकारक है। इसलिए सोने के समय से कई घंटे पहले भोजन कर लेना चाहिए।

बहुत गरम चीजें खाने या पीने से या बहुत ठंडी चीजें खाने या पीने से पेट खराब होता है और दांत भी जल्दी गिर जाते हैं। केवल स्वाद के लिए या फैशन में पड़ कर मसालेदार चाट-पकौड़ी, चाय-काफी, लेमन-सोडा, आइसक्रीम, इत्यादि चीजें खाने से स्वास्थ्य खराब होता है। खास तौर पर ये चीजें बाजार में बनी हुई तो और भी खराब हैं क्योंकि न तो बाजार वाले उन में अच्छी चीजें डालते हैं और न उन को सफाई से बनाते हैं।

भोजन वास्तव में तीन तरह का होता है। सात्विक यानि वह जिस को खाने से शरीर स्वस्थ होता है, बुरे विचार मन में नहीं उठते, चित्त को शान्ति मिलती है और बुद्धि बढ़ती है, जैसे दूध, फल, मेवा, शाक, अनाज, इत्यादि।

दूसरे प्रकार का भोजन होता है राजसी। इस को खाने से सुस्ती बढ़ती है, पाचन शक्ति बिगड़ती है और बुद्धि भी कमजोर हो जाती है। राजसी भोजन लोग स्वाद के लिए खाते हैं उन को जीभ के स्वाद के पीछे यह ध्यान नहीं रहता कि ऐसा भोजन उन के शरीर में क्या गुण या अवगुण पैदा कर सकता है। खूब मसालेदार चाट पकौड़ी, कुल्फी मलाई, तली हुई चटपटी चीजें यह सब राजसी भोजन में गिनी जाती हैं। इसमें पैसा भी अधिक खर्च होता है और गुण भी कम होता है।

तीसरा, और सब से घटिया किस्म का भोजन होता है तामसिक जिस को खाने से मन में उत्तेजना पैदा होती है, बुरी भावनाएं पैदा होती हैं और आदमी का स्वभाव पशुओं जैसा बन जाता है। शराब, मांस, शहद, गूलर, इत्यादि तामसिक भोजन है। ऐसा भोजन मन और बुद्धि दोनों को हानि पहुंचाने वाला होता है।

सात्विक भोजन सब से अच्छा भोजन है। ऐसे भोजन से आदमी में सादगी, दया, शान्ति, बुद्धि बढ़ती है और शरीर पुष्ट होने के साथ चेतन बनता है।

मांस खाने से हानियां

मांस मनुष्य का भोजन नहीं है। जिन पशुओं का भोजन मांस है वे जन्म से ही बच्चों को मांस से पालते हैं तथा उन की शरीर रचना, दांत, मेदा आदि उसी तरह के होते हैं। मनुष्य के दांत, पंजा, नाखून, नसें, हाजमा और शरीर मांस खाने वाले जानवरों की तरह के नहीं होते। रायल कमीशन ने एक रिपोर्ट में लिखा है कि मांस खाने के लिए मारे गए पशुओं के शरीर में तपेदिक जैसे भयानक रोगों के कीटाणु होते हैं। उनका मांस खाने वाले आदमियों को भी वही बीमारियां लग जाती हैं। विज्ञान के अनुसार मांस को हजम करने के लिए मामूली भोजन के मुकाबले चार गुनी शक्ति चाहिए। महात्मा गांधी ने कहा था कि मांस खाना अनेक भयानक बीमारियों की जड़ है।

लोगों का जो यह ख्याल है कि मांस खाने से ताकत बढ़ती है, यह गलत है। क्या हाथी, घोड़ा जैसे बलशाली पशु मांस खाते हैं? इसी तरह यह समझना भी गलत है कि मांस खाने वाले सैनिक अधिक वीरता

से युद्ध कर सकते हैं। प्रो० राममूर्ति, महाराणा प्रताप, भीष्म पितामह, अर्जुन, आदि प्रतापी योद्धा भी मांसाहार नहीं करते थे।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० जोज़िया आल्डफील्ड ने भी कहा है कि यह विद्वानों ने खोज करके सिद्ध कर दिया है कि वनस्पति जाति के भोजन में वे सब गुण मौजूद हैं जो मनुष्य के शरीर, मन व बुद्धि तीनों का बढ़िया से बढ़िया विकास कर सकते हैं। मेवा, अनाज, दूध, फल आदि में जबकि औसतन ८० से ८५ प्रतिशत शक्तिवर्धक अंश होता है, मांस, मछली और अंडे में २८ से ३० प्रतिशत से अधिक नहीं होता।

शाकाहार के विरुद्ध एक भी प्रमाण नहीं मिलता। तभी तो जार्ज बर्नार्ड शा ने कहा है कि मांस खाना अपने पेट को कब्रिस्तान बनाने के बराबर है। अब तो यूरोप में भी अधिक लोग शाकाहार करने लगे हैं।



भामाशाह

स्थान—मेवाड़ की सीमा

[चित्तौड़ की ओर प्यार और दुःख के साथ देखते हुए, अरावली की पहाड़ी पर महाराणा प्रताप, रानी पद्मावती, उन के बच्चे और सैनिक]

महाराणा प्रताप—(मातृभूमि को शीश झुका कर) बप्पारावल और संग्राम सिंह की वीर भूमि, तेरा यह पुत्र तुझे शत्रुओं की दासता से न बचा सका। इस लिए विवश हो कर विदा लेता हूं। मुझे आशीर्वाद दे कि फिर तुझे स्वतन्त्र करवा के मैं फिर तेरी पुण्य भूमि में लौट कर आऊं। (साथी सैनिकों से) मेरे दुःख के साथियो मैं कायर ही हूं जो मजबूर हो कर अपनी जन्मभूमि को दासता में छोड़ कर जा रहा हूं।

एक सैनिक—मेवाड़ को आप पर गर्व है। आप ऐसी बात क्यों कहते हैं ? आप ने देश की रक्षा के लिए क्या नहीं किया ? सभी कुछ तो आहुति कर

दिया । आपके समान देशभक्त कहां मिलेगा ?

जब भाग्य ही बुरा हो तो दुःख करना वेकार है।

महाराणा प्रताप—वीर सैनिक ! अब मैं अपनी मातृ-भूमि पर यवनों का और अत्याचार नहीं देख सकता। इस लिए अब यहां से चले जाने के सिवा चारा भी क्या है ? चलो देर करना खतरे से खाली नहीं है।

[महाराणा प्रताप और उन के साथियों ने चलने के लिए कदम उठाया ही था कि दूर से आते हुए भामाशाह दिखाई दिए]

भामाशाह—(नेपथ्य से) हे मेवाड़-मुकुट । तनिक ठहरिए और मेरी एक प्रार्थना सुनने की कृपा कीजिए ।

महाराणा प्रताप—(रुक कर) अरे ये तो स्वयं भामा-शाह आ रहे हैं ! जरा ठहरें। देखें वह क्या संदेश लाए हैं। (सभी साथी रुक जाते हैं)

(महाराणा प्रताप के चरणों में प्रणाम करते हैं और महाराणा प्रताप उन को उठा कर गले से लगा लेते हैं)

महाराणा प्रताप—मंत्रीवर, आप इतने व्याकुल क्यों हैं ? आप की आंखों में आंसू क्यों ?

भामाशाह—मेवाड़ के भाग्य विधाता। धन न होने से आप सेना नहीं इकट्ठी कर पा रहे हैं और इसी लिए आप को जन्मभूमि छोड़ कर जाना पड़ रहा है। क्या यह हमारे लिए कम शर्म की बात है ?

महाराणा प्रताप—किन्तु भामाशाह इसमें आपका क्या दोष है ? यह सब भाग्य का ही तो खेल है। मुझे तो यह सन्तोष है कि मेरे प्रिय साथियों ने तन, मन और धन से जो भी सम्भव था मेरी सहायता की।

भामाशाह—नहीं राजपूत शिरोमणि। मैं आप की कुछ भी सेवा नहीं कर सका। आप का ही नमक खा कर मेरा यह शरीर बना है और आप की ही कृपा से धन संचय करके मैं सेठ बना बैठा हूं। आज मेवाड़ का सूर्य दर-दर की ठोकरें खाए और मैं धनीमानी बना बैठा ऐश करूं—धिक्कार है मेरे ऐसे जीवन पर।

महाराणा प्रताप—ऐसा न कहो भामाशाह, तुमने भरसक देश की सेवा की है। परन्तु भाग्य में जो लिखा है उसे नहीं मिटाया जा सकता।

भामाशाह—(दृढ़ स्वर में) मिटाया जा सकता है।

प्रयत्न करने पर क्या नहीं हो सकता ? इस लिए इस कठिन समय में मेरी एक प्रार्थना सुनें ।

महाराणा प्रताप—एक नहीं अनेक, भामाशाह आप कहिए क्या कहना चाहते हैं ?

भामाशाह—तो कृपया रेगिस्तान की तरफ मुंह किए खड़े हुए इन घोड़ों का मुंह मेवाड़ की पुण्यभूमि की तरफ मोड़ दीजिए । मेरे खजाने में आपकी ही कृपा से कमाया हुआ काफी धन है । उस के सदुपयोग का इस से अच्छा अवसर कब आएगा । वह सब का सब आप के चरणों में अर्पित है । इस धन से सेना एकत्रित कर के हम बारह वर्ष तक लड़ सकते हैं और दुश्मन के दांत खट्टे कर सकते हैं । आप मेरी तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिए और मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप के पराक्रम से फिर एक बार मेवाड़ पर केसरिया झण्डा फहराएगा ।

महाराणा प्रताप—(आश्चर्य से) भामाशाह, आप का यह सम्पूर्ण त्याग मुझे चकित कर रहा है। परन्तु आप की निजी सम्पत्ति पर मेरा क्या अधिकार है ?

भामाशाह—प्रभो, ऐसा न कहिए । मेवाड़ मेरी जन्म-भूमि है । यह सम्पत्ति सारे देश की सम्पत्ति है । मैंने तो केवल धरोहर समझ कर इस की रक्षा की

है। यह सारे देश की रक्षा के काम आए इस से ज्यादा मेरे लिए और क्या सौभाग्य होगा ?

महाराणा प्रताप—दानवीर भामाशाह आप धन्य हैं। जिस धन के पीछे कैकेयी ने राम को चौदह वर्ष वनों में भटकाया, जिस धन के लिए वनवीर ने अबोध राजा उदयसिंह का घात करने का असफल प्रयत्न किया और जिस धन के पीछे आदमी क्या-क्या नहीं करता, उसी धन को आप तिनके की तरह त्याग रहे हैं। आप की उदारता धन्य है। आप महान् हैं। आप के इस एहसान को देशवासी कभी न भूलेंगे। इतिहास में आप का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा।

भामाशाह—(विनय से) इस साधारण कर्त्तव्य पालन की इतनी तारीफ न कीजिए राजन्। यह धन इस भले काम में लगे, इस से अधिक प्रसन्नता और संतोष की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है ?

महाराणा प्रताप—भामाशाह, आज आपने मुझे नया जीवन दिया है। मैं अब मेवाड़ के उद्धार के लिए दुगने उत्साह से दृढ़ प्रतिज्ञ हूं।

(सैनिकों से) वीर सहचरों। भामाशाह की इस

वड़ी सहायता ने हमारी कठिनाइयां दूर कर दी हैं। आओ फिर एक वार युद्ध की तैयारी करें और अपनी विजय यात्रा के लिए सर्वस्व अर्पण करने के लिए कमर कसें।

सव—महाराणा प्रताप की जय। मेवाड़ मेदिनी की जय। दानवीर भामाशाह की जय।

(पटाक्षेप)



जीव और उस के भेद

संसार में दो द्रव्य मुख्य हैं : जीव और अजीव ! जीव उसे कहते हैं जिस में ज्ञान होती है यानि जानने या देखने की शक्ति होती है । दूसरे शब्दों में जीव उसे कह सकते हैं जिस में आत्मा होती है और अजीव उसे जिस में नहीं होती । अजीव में इसी लिए जानने या देखने की शक्ति नहीं होती ।

जीव पांच प्रकार के होते हैं :

(१) जिन के केवल एक इन्द्री होती है यानि जो केवल स्पर्षण अर्थात् छूने को महसूस कर सकते हैं । इन के केवल सांस लेने की शक्ति होती है । यह भोजन अपनी खाल से चूस कर करते हैं । उदाहरण के लिए पेड़-पौधे, वे जीव जिन से मिल कर पृथ्वी बनती है, वे जीव जिन से मिल कर जल बनता है, वे जीव जिन से मिल कर अग्नि बनती है और वे जीव जिन से मिल कर

वायु बनती है। ऐसे एकेन्द्रिय जीवों को स्थावर जीव भी कहते हैं।

(२) द्विइन्द्री जीव अर्थात् जिन के स्पर्पण (छूने) और रसना अर्थात् जीभ भी होती है। ऐसे जीव मुंह से भोजन खाते या पीते हैं। जैसे लट, केंचुआ, शंख, जौंक इत्यादि।

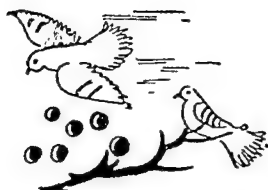
(३) तीन-इन्द्री जीवों के स्पर्षण, रसना (जीभ) और नाक अर्थात् सूंघने की शक्ति भी होती है। इन जीवों में चींटी, खटमल, जूं इत्यादि की गिनती होती है।

(४) चार-इन्द्री जीवों में स्पर्षण, रसना, घ्राण (सूंघने की शक्ति) के अतिरिक्त आंखें अर्थात् देखने की शक्ति भी होती है जैसे ततैया, मच्छर, मक्खी, टिड्डी इत्यादि।

(५) पांच-इन्द्री (पंचेन्द्रिय) जीवों के स्पर्पण, रसना, घ्राण, नयन और कर्ण (कान यानि सुनने की शक्ति) सभी होते हैं। अर्थात् पंचेन्द्रिय जीव सब तरह से पूरा जीव होता है। देवी-देवता, पुरुष-नारी, बैल-घोड़ा आदि जानवर ये सब पंचेन्द्रिय जीव हैं।

यह पांचों प्रकार के जीव कर्मानुसार देह त्याग

कर नई-नई देह धारण करते रहते हैं जैसे चींटी मर कर बैल बन जाती है, बैल मर कर मनुष्य की देह में आ जाता है, मनुष्य मर कर देव बन जाता है, इत्यादि इत्यादि। इसी चक्र को संसार में आवागमन कहा गया है। अनन्त काल तक जीव इसी तरह भांति-भांति की पर्य्यायों में घूम-घूम कर सुख-दुख भोगता रहता है। जो महान् आत्मा अपने आप को शुद्ध कर कर्मों का नाश कर देती है और जो आत्मा का स्वभाव है यानि ज्ञान केवल उसी का स्वरूप रह जाती है वह केवल ज्ञानी हो कर संसार के आवागमन से छूट जाती है। उसी आत्मा को हम कहते हैं कि उस का मोक्ष हो गया और वह परमात्मा हो गई।



जीवन और कर्म

(चार कषाय)

वोलचाल की भाषा में कषाय
शब्द का अर्थ है चेप वाली वस्तु जैसे
पेड़ का गोंद। जो वस्तु किसी एक वस्तु को
दूसरे में चिपकाने का काम करे उसे कषाय कहते
हैं। पिछले वर्ष के पाठ में वालकों ने पढ़ा था कि
आत्मा का स्वभाव ज्ञान है। परन्तु उस पर कर्म-
रूपी मैल चिपका रहता है इस लिए उस
का शुद्ध ज्ञान नहीं निखरता और
इसी लिए उसे संसार में
आवागमन के वंधन में फंसना पड़ता है। इन कर्मों को
आत्मा से चिपकाने में जो चीज सहायक होती है उसे
ही कषाय कहा जाता है।

एक सूखे वस्त्र पर यदि मिट्टी गिर जाय तो वह
अपने आप झड़ जाती है, उस से चिपकती नहीं। परन्तु
यदि उस वस्त्र में कोई चिपकनी चीज या चिकनाई
लगी हो तो धूल उस से लग कर चिपक जाएगी और
कपड़ा मैला हो जाएगा। इसी तरह विना कषाय के

जो हम काम करते हैं उस से कर्म आत्मा में नहीं चिपकता। संसार के सभी प्राणी चौबीस घंटे कुछ न कुछ तो करते ही रहते हैं। जो स्वाभाविक काम हैं उन से जो कर्म बनते हैं, वे अपने आप ही जल्दी छूट जाते हैं, आत्मा में चिपकते नहीं।

आत्मा से कर्मों को चिपकाने वाले कषाय चार प्रकार के होते हैं :

(१) क्रोध—शिक्षक या माता-पिता जब बच्चे को उस की गलती ठीक करने के लिए डांटते हैं तब उस में क्रोध कषाय नहीं होती। परन्तु यदि तुम क्रोध में आ कर किसी से लड़ पड़ो, गाली-गलौच करो, या मार-पीट करो तो उस से कितना कष्ट तो उस को होगा जिस से तुम लड़ोगे और तुम को भी कितनी अशान्ति होगी। गुस्से में खून जलने लगता है, शरीर कांपने लगता है और घटना होने के बाद भी आदमी उसी बात को सोच-सोच कर जलता-भुनता रहता है। क्रोध से शरीर भी कमजोर होता है और मन भी खराब होता है। ऐसी अवस्था में किया गया कर्म आत्मा

को कमजोर पा कर गोंद की तरह उस से चिपक कर बैठ जाता है।

(२) इसी तरह आत्मा को अशुद्ध बनाने में दूसरा कषाय मान है जिस से मन में अभि-मान पैदा होता है। मनुष्य घमण्डी बन कर अपने आप को ऊंचा और दूसरों को नीचा समझने लगता है। मित्र भी ऐसे आदमी के शत्रु बन जाते हैं। ऐसे आदमी का समाज में भी कोई आदर नहीं होता। इस लिए मान कषाय त्याग कर मनुष्य को विनयशील बनना चाहिए।

(३) तीसरा कषाय है माया यानि छल-कपट। मायाचारी मनुष्य सदा दूसरे को धोखा दे कर, झूठ बोल कर, झांसा दे कर अपना उल्लू सीधा करने के चक्कर में रहता है। उस से सदा दूसरों को दुख और नुकसान ही पहुंचता है किसी का भला नहीं होता। उस का कोई विश्वास नहीं करता और जब उस का छल-कपट दूसरे लोग जान जाते हैं तो उस का बड़ा अनादर होता है, लोग उस के शत्रु बन जाते हैं। इस लिए

मायाचारी छोड़ कर मनुष्य को सरल-स्वभाव रखना चाहिए।

(४) लोभ—जो चौथा कषाय है, उस को तो पाप का बाप ही बताया गया है। लोभी आदमी तो अपने फायदे के लिए झूठ भी बोलता है, छल-कपट भी करता है, दूसरे की हत्या भी कर डालता है, चोरी करता है, ठगी करता है। परन्तु उस को कितना भी धन क्यों न मिल जाए उस का लोभ नहीं छूटता और वह भी अधिक धन एकत्रित करने के लिए गंदे से गंदा काम करने के लिए सदा तैयार रहता है। उस के धन की भूख कभी मिटती ही नहीं। इस लिए लोभी न बन कर मनुष्य को संतोषी बनना चाहिए।

अपनी आत्मा को शुद्ध रखने के लिए; दुःख और अशान्ति से बचने के लिए और समाज में आदर पाने के लिए इन चार कषायों से जहां तक सम्भव हो सके बचने की कोशिश करनी चाहिए।

वीर शिरोमणि चामुण्डराय

लगभग एक हजार वर्ष पुरानी बात है। भारत के दक्षिण में जहां आज मैसूर राज्य है वहां मारासिंह द्वितीय का राज्य था। उनके वीर सेनापति चामुण्डराय बड़े वीर और ज्ञानी पुरुष थे।

वीर चामुण्डराय की वीरता से कई पास पड़ौसी राक्षस राजाओं की हार हुई और राजा मानसिंह की कीर्त्ति दूर-दूर तक फैली।

चामुण्डराय यद्यपि ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे, उन की माता जैन धर्म में श्रद्धा रखती थीं। उन्हीं के पुण्य प्रभाव से चामुण्डराय भी अहिंसादि धर्मों के पक्के पक्षपाती थे। जहां एक तरफ उन्होंने आचार्य आर्यसेन के पास अस्त्र-शस्त्र विद्या प्राप्त की, वहीं दूसरी ओर उन को आचार्य अजितसेन स्वामी से उच्च कोटि की धर्म शिक्षा का भी लाभ हुआ। इस तरह सेनापति चामुण्डराय कर्मवीर और धर्मवीर दोनों ही गुणों में पूर्ण थे।

यद्यपि चामुण्डराय को अहिंसा में पक्का विश्वास था परन्तु सेनापति होते हुए उन्हों ने देश की रक्षा व जनता के हित के लिए बड़ी-बड़ी लड़ाइयां लड़ीं और विजय पाई। उन्हें विश्वास था कि अहिंसा कभी किसी को कायर नहीं बनाती बल्कि जो बहादुर होते हैं वही असली कर्मवीर बन पाते हैं और अहिंसा का ठीक-ठीक पालन कर सकते हैं। अभी थोड़े ही दिन की बात है कि इसी विश्वास को लेकर बापू ने स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी और देश को अंग्रेजों की दासता से छुड़ाया। वर्त्तमान काल के ये महापुरुष जिनके बराबर अहिंसा में पूरा विश्वास रखने वाला इस जमाने में कोई नहीं हुआ, क्या कायर थे? हमारी सरकार अहिंसा में विश्वास रखती है परन्तु हमारे वीर सैनिक जो देश की रक्षा के लिए भयंकर युद्ध लड़ कर अपने जान की बाजी लगा देते हैं, क्या कायर हैं? इसलिए जो लोग यह कहते हैं कि अहिंसा मनुष्य को कायर बना देती है, वे भारी भूल करते हैं।

चामुण्डराय ने कितने ही युद्ध जीत कर 'समर धुरंधर', 'वीर मार्त्तण्ड', 'समर परशुराम', 'सुभट चूढ़ामणि', इत्यादि अनेक उपाधियां पाईं। आज भी भारत के वीर सिपाही जब युद्ध में बड़ी बहादुरी के काम

करते हैं तो उनको 'परमवीर चक्र', 'महावीर चक्र' इत्यादि उपाधियों से सुशोभित किया जाता है।

चामुण्डराय के मार्ग दर्शन में केवल शूरवीरता ही नहीं बढ़ी बल्कि उनके काल में मैसूर राज्य में शिल्पकला, साहित्य, भवन निर्माण, व्यापार, खेती, सभी दिशाओं में खूब उन्नति हुई। कन्नड़ भाषा में बहुमूल्य ग्रन्थों व काव्यों की महान रचना हुई क्योंकि साहित्यकारों, कलाकारों, कवियों, इत्यादि का बड़ा मान था और राज्य की ओर से उनको उचित पुरस्कार मिलता था।

अपने गुरू की आज्ञा से चामुण्डराय ने बाहुबलि की एक ५७ फुट ऊंची विशाल प्रतिमा का निर्माण कराया जो सुन्दरता व कला की दृष्टि से अपने किस्म की संसार भर में अद्वितीय प्रतिमा है। मैसूर राज्य में स्थित श्रवणबेलगोल नामक गांव में बाहुबलि की यह प्रतिमा एक पहाड़ी पर स्थित है और उसकी सुन्दरता को देखने के लिए संसार भर के यात्री श्रवणबेलगोल की यात्रा कर अपने को धन्य मानते हैं। बाहुबलि की यह प्रतिमा गोमटेश्वर के नाम से भी प्रसिद्ध है।

प्यारे बालको, वीर सेनापति चामुण्डराय के समान तुम भी वीर, साहसी, परोपकारी, गुणग्राही बन कर अपनी प्यारी मातृभूमि का मुख उज्ज्वल करो।

नशीली वस्तुओं का निषेध

मनुष्य जाति स्वभाव से नीति, विनय आदि अच्छी आदतों वाला जीव है। परन्तु उन लोगों को जिन्हें किसी नशीली चीज के सेवन से बुरी लत पड़ जाती है, वे अपने अच्छे स्वभाव को खो देते हैं। उन्हें क्या खाना चाहिए, क्या नहीं खाना चाहिए, क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए इसका बिल्कुल ही ज्ञान नहीं रहता। भांग, धतूरा, शराव, चरस, गांजा, तम्बाकू, अफ़ीम आदि नशीली चीजें बुद्धि को और शरीर को दोनों को ही नष्ट-भ्रष्ट करने वाले होते हैं। इनके चक्कर में पड़ कर मनुष्य जुआ, मांस भक्षण, चोरी, वेश्या सेवन, हत्या जैसे सभी भयंकर कुकर्म करने लगता है। अच्छे बुरे का तो उसे बिल्कुल ज्ञान ही नहीं रहता।

कुछ लोग बहका कर कभी सोसायटी और फैशन के नाम पर या धर्म के नाम पर भोले भाले बालकों को या युवकों को नशा करना सिखाने की कोशिश करते हैं। कहते हैं कि जिस ने सिगरेट या शराब नहीं

पी वह पोंगापंथी है और आजकल की सोसायटी में नहीं चल सकता। यह कोरा भुलावा है। जो लोग विदेशों की यात्रा करते हैं उन्हों ने वार-वार हमें वताया है कि ऐसे देशों में भी जहां सिगरेट का आम रिवाज है, मांस भक्षण रोज किया जाता है, और शराव पानी की तरह पी जाती है, वहां भी उस भारतीय का अधिक सन्मान होता है जो इन चीजों को छूता तक नहीं।

दूसरी ओर कुछ लोग धर्म के नाम पर नशीली चीजें खिलाने या पिलाने की कोशिश करते हैं। कहते हैं भगवान शंकर भी तो भंग, चरस, गांजा, धतूरा पीते खाते थे, तुम भी खाओ तो भगवान शंकर प्रसन्न होंगे। यह सब उन की मनगढ़ंत वातें हैं। वह भोले युवकों को कुमार्ग पर डाल कर अपना उल्लू सीधा करने की कोशिश में रहते हैं। भला सोचो तो भंगेड़ी भंग के नशे में कैसा पागल हो कर फिरता है, गंदी वातें वकता है, गंदे काम करता है, नालियों में पड़ा रहता है क्या कभी भगवान शंकर ऐसे कर्म कर सकते हैं। वे तो बड़े दयालु, सहृदय, वीर, और बुद्धिमान कहलाते हैं उनका तो नाम ही "शिव" है जिसका अर्थ है "अच्छा"। नशे में पड़ कर कभी कोई आदमी अच्छा वन ही नहीं सकता।

भुलावे में डालने वाले इन दोनों प्रकार के दुष्ट लोगों से दूर रहना चाहिए। वरना नशे में पड़ कर बुद्धि ही नहीं शरीर का भी सत्यानाश हो जाएगा। शराब से तपेदिक, तम्बाकू से कैंसर जैसे भयानक रोग लग जाते हैं जिन से मनुष्य घोर दुःख पाता है और सड़ गल कर बडी वेदना से शरीर छूट पाता है।

इसके अतिरिक्त नशीली चीजों में कितना अनावश्यक धन नष्ट होता है। करोड़ों एकड़ भूमि जिस में तम्बाकू जैसी चीजें बोई जाती हैं, यदि अनाज बोने के काम में आए तो कितने भूखे लोगों के लिए अन्न पैदा हो ? आज शराब, सिगरेट, बीड़ी, भंग आदि में जो अरबों रुपया खर्च होता है उस को देश के सुधार में लगाया जाए तो देश का बड़ा लाभ हो।

बहुत से घरों में जिन लोगों को नशीली चीजों की लत पड़ जाती है, वे सारी कमाई उसी में फूंक देते हैं और उन के बच्चे तथा घर वाले अन्न और कपड़े जैसी आवश्यक चीजों को भी तरसते रहते हैं। अतएव यदि अच्छे नागरिक बनना चाहते हो तो नशीली चीजों से दूर रहो और उन लोगों से भी बचो जो ऐसी खतरनाक चीजों का सेवन करते हैं। याद रखो कि बुरी लत एक बार लग जाए तो फिर छूटती नहीं।

मानव जीवन का उद्देश्य

अक्सर जीवन में बच्चों से यह प्रश्न पूछा जाता है बड़े
हो कर तुम क्या बनोगे ? कोई कहता है कि
मैं पढ़ लिख कर डॉक्टर बनूंगा, कोई
कहता है इंजीनियर बनूंगा, कोई
कहता है मैं प्रोफेसर
बनूंगा, तो कोई कहता है कि मैं
तो लीडर ही बनूंगा । इन सब बातों में
रुपया कमा कर समाज में अपना स्थान बनाने
की भावना होती है । लगता है कि जैसे ज्यादा से
ज्यादा रुपया एकत्रित कैसे किया जाए यही सारे
संसार का एकमात्र उद्देश्य बन गया है ।

हमारे देश में, जो महावीर, बुद्ध, गांधी जैसे तपस्वियों की या भीष्म पितामह, श्रीकृष्ण, रामचन्द्र और ध्रुव जैसे कर्मवीरों की पुण्य जन्म-भूमि है, यह कोई नहीं कहता कि बड़ा हो कर मैं कोई ऐसा काम करना चाहता हूं जिस के द्वारा समाज-सेवा, देश-सेवा या आत्म-कल्याण कर के सुख-शान्ति स्थापित हो ।

वास्तव में यही जीवन का परम उद्देश्य होना चाहिए।

डाक्टर अवश्य बनो परन्तु मात्र इस भावना से नहीं कि मोटी-मोटी फीस ले कर ढेर सा रुपया पैदा कर के ही बड़े आदमी बन जाओगे बल्कि इस लिए कि डाक्टरी सीख कर उन लोगों की सेवा कर सकोगे जो रोग से पीड़ित होकर घोर कष्ट पा रहे हैं चाहे वे अमीर हों या गरीब, पुलिस के अफसर बनना चाहो तो यह भावना लेकर कि अपने नगर को चोरों, ठगों, हत्यारों और बदमाशों से मुक्त करके अमनचैन कायम कर सको, प्रोफ़ेसर बनो तो इस भावना से कि आने वाली पीढ़ी के युवकों को सच्ची शिक्षा देकर उन्हें अच्छे नागरिक बना सको।

याद रक्खो कि केवल अधिक धन संचय कर लेने से ही न तो देश का कल्याण हो सकता है और न तुम्हें ही संतोष हो सकता है। यदि ऐसा होता तो जिनके पास रुपया है वे सुख संतोष से रहते। परन्तु ऐसा दिखाई नहीं देता। उनकी रुपए की भूख कभी मिटती नहीं है और सारा जीवन इस भूख का पेट भरने में व्यतीत हो जाता है। संसार में रह कर पैसा कमाना भी आवश्यक है जिस से तुम अपनी आवश्यकताएं

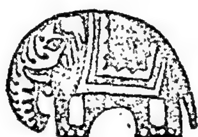
स्वयं पूरी कर सको और किसी पर आश्रित न रहो परन्तु पैसा कमाना मात्र कभी मानव जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता। यह तो केवल अपने शरीर की रक्षा कर के और अच्छे काम कर ने का एक साधन मात्र है।

अपना पेट तो जानवर, पक्षी, कीड़े, मकौड़े भी किसी तरह पाल कर जीवन भर जी लेते हैं। क्या केवल पेट पालने की भावना ही मन में लेकर हम भी जानवरों की तरह ही जीवन भर बिता देना चाहते हैं? मानव जीवन मिला है तो अच्छे-अच्छे काम करने की ऊंची भावना मन में रक्खो और यह अच्छी तरह समझ लो कि शुद्ध जीवन व्यतीत कर के अपना तथा और जीवों का कल्याण कर पाओगे तभी तुम्हारा यह मानव जीवन सफल होगा। तभी तुम महावीर, गांधी, जवाहर, जैसे महान व्यक्ति बन कर अमर कीर्त्ति के भागी बन सकोगे।

और काम करने वाले को भी सुभीता रहता है, समय भी कम लगता है और आपस में मारपीट और हाथा-पाई की भी नौबत नहीं आती।

जो बच्चे बड़ों के आज्ञाकारी होते हैं, विनय के साथ उन के कहे अनुसार, उचित समय पर कार्य करते हैं, वे सबके प्रिय बन जाते हैं। उन का सब आदर करते हैं और उन के गुणों का भलो प्रकार विकास होता है।

यूरोप और अमरीका के देश जो आज इतने आगे बढ़ गए हैं तो अनुशासन के कारण ही। रेल, बसों में, घर में, बाजार में, सिनेमाघरों में, खेल के मैदान में, सब जगह अच्छे अनुशासन के कारण ही वे अच्छे नागरिक बनते हैं। जैसे सोने के गहने में नगीने जड़ जाने से उसकी सुन्दरता चौगुनी बढ़ जाती है वैसे ही अनुशासन में रहने वाले बच्चों के गुणों का चौगुना विकास होता है।



बुरी आदतें

(सप्त कुव्यसन)

व्यसन बुरी आदतों को कहते हैं। जिन आदतों से मनुष्य का भला होता है वे अच्छी आदतें हैं और जिन आदतों से मनुष्य गलत रास्ते पर चल कर अपना बुरा कर लेता है वे व्यसन या कुव्यसन कहलाते हैं। मुख्य व्यसन सात हैं जो हमेशा मनुष्य को पाप की ओर ले जाते हैं। इनका त्याग किए बिना मनुष्य सच्चा अहिंसा धर्म नहीं पालन कर सकता।

(१) जुआ—किसी भी तरह की हारजीत की शर्त लगाकर जो काम किया जाता है वह जुआ कहलाता है। पैसा लगाकर ताश खेलना, नक्को-मुट्ठे खेलना, कंचे खेलना, बद-बद कर पतंग उड़ाना, चौपड़ खेलना आदि सब जुए में शामिल है। जुआ खेलने का व्यसन जिस को पड़ जाता है वह चाहे कुछ भी हो जाए, चाहे बच्चे भूखे मर जाएं, उन को कपड़ा न नसीब हो,

उधार मांगना पड़े, यहां तक कि चोरी भी करनी पड़े, तो भी जुए के लिए कहीं न कहीं से पैसा जरूर लाता है। महाभारत में तुम ने पढ़ा ही होगा कि जुआ खेलने के कारण पांडवों की कैसी दुर्दशा हुई थी। इस व्यसन के कारण धर्मराज युधिष्ठिर जैसे बुद्धिमान आदमी की भी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी।

(२) **मांसाहार**—मांस, मछली और अण्डे खाने वालों का स्वभाव भी उन्हीं जानवरों जैसा हो जाता है जिन का वह मांस खाते हैं। मांस भक्षण करने वाली जातियां ही दुनिया में सब से ज्यादा क्रूर होती हैं। ऐसे लोगों को हत्या, झूठ, चोरी आदि पाप करने में भी संकोच नहीं होता। मांस अप्राकृतिक भोजन है और इस के खाने से शरीर में अनेक रोग पैदा हो जाते हैं।

(३) **मद्य (शराब या और कोई नशा)**—अंगूर, महुए का रस, जौ का रस, इत्यादि वस्तुओं को बन्द कर के बहुत दिनों तक सड़ाया जाता है और जब उस में कीड़े पड़ जाते हैं तो उस को छान-छून कर शराब बनाई जाती है। इस के पीने वाला व्यक्ति मदमस्त हो जाता है, उस के मुंह से दुर्गन्ध आने लगती है और उस को अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं रहता।

(४) **वेश्यागमन**—जो स्त्री केवल धन कमाने के लिए किसी भी पुरुष के साथ रमण करती है, उसे वेश्या कहते हैं। ऐसी स्त्रियों के चक्कर में पड़ कर आदमी कंगाल हो जाता है, स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और शरीर में गंदी-गंदी बीमारियां लग जाती हैं।

(५) **शिकार**—मौज-शौक के लिए या मांस खाने के लिए बेचारे निरपराध भयभीत हिरन, पक्षी, आदि को मारना शिकार कहलाता है। संसार में जैसे आदमी को जीने का हक है वैसे ही पशु-पक्षी कोई भी मरना नहीं चाहता। उन को अकारण मारना निरी निर्दयता है।

(६) **चोरी**—रक्खी हुई, गिरी हुई या भूली हुई किसी भी दूसरे की चीज को बिना उस के स्वामी की आज्ञा के लेना चोरी कहलाता है। चोरी किया हुआ धन कभी रह नहीं सकता और चोर को कठोर राजदंड भोगना पड़ता है। चोर के मन में सदा दूसरे की चीज उड़ाने की धुन रहती है और जिस की चीज चुराई जाती है उस को अत्यन्त दु:खित होना पड़ता है।

(७) **पर नारी सेवन**—यह भी वेश्या सेवन की भांति ही घृणित व्यसन है। विलासिता के वश दूसरे की स्त्री पर बुरी दृष्टि रखने वाला व्यक्ति व्यभिचारी

कहलाता है और उस का धर्म, धन और कीर्ति सब नष्ट हो जाते हैं। समाज में उसे घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। यदि भेद खुल जाए तो झगड़ा होकर मारपीट और हत्या तक की नौबत आ जाती है।

संसार में यह सातों ही व्यसन घृणित पाप समझे जाते हैं और यह परलोक भी बिगाड़ने वाले हैं। सदाचारी व्यक्ति को इन से सदा दूर रहना चाहिए।



सदाचार

पांच अणुव्रत

सदाचारी व्यक्ति न्याय से धन कमाता है, गुरुजनों का आदर करता है और मीठी वाणी बोलता है। ऐसा व्यक्ति लज्जाशील होता है और सज्जनों की संगति में रहता है। ऐसे सदाचारी व्यक्ति सदा पांच व्रतों का पालन करते हैं। गृहस्थ के लिए ये पांच व्रत छोटे रूप में होते हैं इस लिए उन को अणु (छोटे) व्रत कहा जाता है और संन्यासी उन को बड़े रूप में पालन करते हैं इस लिए उन को महाव्रत कहा जाता है।

(१) **अहिंसा अणुव्रत**—एकेन्द्रिय जीव की हिंसा गृहस्थ के लिए वर्जित नहीं है। परन्तु द्विन्द्रीय जीव या तीनीन्द्रीय, चौइन्द्रीय और पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा गृहस्थ को भी यथासम्भव नहीं करनी चाहिए। इस हिंसा के भी अनेक भेद हैं जो आगे चल कर 'अहिंसा' के विशेष पाठ में पढ़ाए जाएंगे। यहां केवल इतना ही समझ लेना पर्याप्त होगा कि जीव हिंसा से जहां तक संभव हो बचना चाहिए। हिंसा केवल जान से मार देने को ही नहीं कहते। किसी को बांध कर अकारण

पीड़ा पहुंचाना, निर्दयता से पीटना, शरीर के अंग काटना, इत्यादि भी हिंसा में गिने जाते हैं। परन्तु डॉक्टर जो चीराफाड़ी रोगी शरीर को अच्छा करने के इरादे से करते हैं वह हिंसा नहीं होती। अहिंसा-अणुव्रती को लाभवश मनुष्य पर शक्ति से अधिक बोझ भी नहीं लादना चाहिए और न ही शक्ति से अधिक काम लेना चाहिए। किसी को भूख प्यास की पीड़ा पहुंचाना भी अहिंसा-अणुव्रती के लिए मना है। अप्रिय वचन बोलना भी (द्वेषवश) हिंसा में गिना जाता है।

(२) **अचौर्य व्रत**—इस व्रत के पालन करने वाले को बिना दी हुई वस्तु को उठा कर अपने काम में लाना या किसी को देना मना है। परन्तु जो चीजें सर्वसाधारण के उपयोग के लिए हैं जैसे जल, मिट्टी इत्यादि उन को बिना पूछे लिया जा सकता है। चोरी कराना, चोरी का माल खरीदना, नापतोल के बाटों को कमती-बढ़ती रखना, बिक्री की चीज में मिलावट करना, अकाल से लाभ उठा कर ज्यादा मुनाफाखोरी करना, या घूस लेना ये सब बातें चोरी में गिनी जाती हैं।

(३) **ब्रह्मचर्य अणुव्रत**—काम वासना एक प्रकार का रोग है अतएव अपनी पत्नी को छोड़ कर अन्य

स्त्री के साथ भोग की इच्छा करना सदाचारी के लिए वर्जित है।

(४) **सत्य अणुव्रत**—जो वस्तु जैसी हो उस को वैसा न कहना असत्य कहलाता है। परन्तु जो बात सत्य होने पर भी दूसरे को दुख पहुंचाने के लिए बोली जाती है वह भी असत्य ही है जैसे काने व्यक्ति को काना कह कर चिढ़ाना असत्य गिना जाएगा। इस के विपरीत यदि असत्य बोल कर किसी निर्दोष व्यक्ति के प्राणों की रक्षा होती हो या उसे अत्याचार से बचाना हो तो सत्याणुव्रती के लिए उस असत्य का भी निषेध नहीं होता। क्रोधवश या लालच में पड़ कर कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए।

(५) **अपरिग्रह अणुव्रत**—रुपया, पैसा, जमीन, जायदाद इत्यादि में आसक्ति रखने को परिग्रह कहते हैं। अणुव्रती को अपनी इच्छाएं सीमित रखने को ही अपरिग्रह अणुव्रत कहते हैं। इन चीजों की भूख की कोई सीमा नहीं होती इस लिए सदाचारी व्यक्ति संतोष का अभ्यास करता है और जितना आवश्यक हो उस से ज्यादा का त्याग करता है। इसी में सुख की प्राप्ति होती है। असंतोषी व्यक्ति को चाहे जितना भी मिल जाए वह और भी अधिक पाने की लालसा में सदा दुखी बना रहता है।

बापू का बचपन

गांधी जी का जन्म पोरबन्दर में हुआ था। उन के पिता का नाम करमचन्द गांधी और माता का नाम पुतली बाई था। गांधी जी के पिता तो धार्मिक थे ही, उन की माता भी बड़ी धर्मात्मा महिला थीं। वह व्रत, उपवास और देवदर्शन नियमपूर्वक करती थीं। बालक गांधी पर ऐसे सदाचारी और नेक माता-पिता के उदाहरणों का अच्छा प्रभाव पड़ा क्यों कि यदि माता-पिता का चरित्र अच्छा हो तो उन की सन्तान पर भी अच्छे संस्कार पड़ते हैं।

एक दिन नगर में एक नाटक मण्डली आई और उस ने सत्य हरिश्चन्द्र का नाटक खेला। गांधी जी इस नाटक को बार-बार देखने जाते थे। हरिश्चन्द्र के कष्टों को देख-देख कर वह कई बार रोए और सत्य पर मर मिटने का उन्हों ने पक्का निश्चय कर लिया। इस तरह बचपन में ऐसे सुन्दर संस्कार धीरे-धीरे

बनते चले गए। जैसे उपजाऊ धरती में बीज सहज ही पनप जाता है, इसी तरह संस्कारी बालक में सद्‌गुण झट जड़ पकड़ लेते हैं।

गांधी जी का एक दोस्त था जिस में कई बुरी आदतें थीं। उन के माता-पिता को उस लड़के का साथ बिलकुल पसन्द नहीं था। पर भोले बालक गांधी जी उस की चालबाजी में ऐसे फंसे कि उसे ही अपना सच्चा दोस्त समझने लगे। इस मित्र ने गांधी जी को यह अच्छी तरह समझा दिया कि हम लोग इसी लिए कमजोर हैं कि हम मांस नहीं खाते और इसी लिए मुट्ठी भर अंग्रेज हम पर शासन करते हैं। वे मांस खाते हैं इस लिए बलवान हैं। और यह कि मांस खाने वाले निडर होते हैं। चूंकि गांधी जी स्वयं डरपोक थे और चोर, भूत व सांप के डर से अंधेरे में जाते डरते थे, वह उस मित्र की बातों में आ गए। उन के मन में यह बात घर कर गई कि देश के सब लोग मांस खाने लगें तो देश जल्दी आजाद हो जाएगा।

गांधी जी जानते थे कि मांस खाना उन के माता-पिता कभी सहन नहीं करेंगे। इस लिए उस मित्र के भुलावे में आकर एक भटियारे की दुकान में उन्हों ने मांस खाया। उन्हों ने लिखा है, "मांस चमड़े जैसा लग

रहा था। खाना असम्भव हो गया और मुझे कै आने लगी। मेरी वह रात बड़ी कठिनाई से कटी। सपने में ऐसा मालूम होता था मानो बकरा मेरे पेट में जिन्दा है और 'में-में' करता है। मैं रात भर चौंक-चौंक कर उठता और पछताता रहा।"

इस तरह के भोज का चार-पांच बार ही प्रबन्ध हो सका। जब गांधी जी ऐसे भोज में सम्मिलित होते थे तो उन को घर खाना न खाने का कोई झूठा बहाना बनाना पड़ता था। इस प्रकार झूठ बोलने से उन की आत्मा को बहुत कष्ट होता था। मन कचोटता रहता। अन्त में गांधी जी ने अपने मित्र से साफ-साफ कह दिया कि मां-बाप से झूठ बोल कर वह मांस नहीं खा सकते। इस तरह उस दुष्ट मित्र से उन्हों ने अपनी जान छुड़ाई।

गांधी जी के पिता जी बड़े सत्संग प्रेमी थे। वे नित्य मन्दिर जाया करते थे। साथ में बच्चों को भी ले जाते थे। घर पर कई जैन साधु भी चर्चा करने आया करते थे। उन के कई मुसलमान और पारसी मित्र भी थे। ये लोग अपने-अपने धर्म की बातें गांधी जी के पिता जी को सुनाया करते थे। इस तरह

बचपन से ही गांधी जी के मन में सब धर्मों के प्रति सद्भावना जाग उठी थी।

जब गांधी जी विलायत पढ़ने गए तो बहुत से लोगों की तरह-तरह की भुलावे की बातों में पड़ कर उन्हों ने कभी मांसाहार करना स्वीकार नहीं किया यद्यपि इस कारण भोजन के लिए उन्हें बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बाद में गांधी जी शाका-हारियों की एक संस्था के सदस्य बन गए और उन्हों ने अपने भोजन संबंधी प्रयोग आरम्भ कर दिए। उन्हों ने घर से मंगाई मिठाई व मसाले खाने बन्द कर दिए और चाय तथा काफी भी छोड़ दी। कोको तथा उबली हुई सब्जी पर ही गुजर करने लगे। इन प्रयोगों से गांधी जी ने समझ लिया कि स्वाद का असली स्थान जीभ नहीं बल्कि मन है।

धर्म पर आस्था ने ही गांधी जी को लालच में पड़ने से बचाया और गलत राह पर जाने से रोका।

अहिंसा

जिस तरह हम
सुख से जीना चाहते हैं
और दुख से बचना चाहते हैं
उसी तरह संसार के सभी छोटे-बड़े
जीव दुख से बच कर सुख पूर्वक जीना
चाहते हैं। हम सभी एक दूसरे को किसी तरह का
कष्ट न दे कर सुख पहुंचाने का ही प्रयत्न
करें—इसी पवित्र भावना का नाम
अहिंसा है। भगवान महावीर
के शब्दों में "जीओ
और जीने दो।"
हिंसा किसी को जान से मारने मात्र से ही
नहीं होती परन्तु हमारे जिस काम से
या बात से किसी दूसरे को दुख
पहुंचे वह भी हिंसा ही
है। समझ लो
कि जिस बात से हमें दुख होता है वह काम हम किसी
दूसरे के लिए कदापि न करें। जैसे हमें कोई गाली

दे, झूठ बोले, हमारी चीज चुरा ले, हमें ठग ले, या हमें मारे तो हमें दुख होता है। उसी तरह ऐसे काम हम किसी दूसरे के लिए करेंगे तो उस को दुख होगा इस लिए हमें ऐसे कामों से बचना चाहिए। अपने व दूसरों के सुख के लिए हमें सदा अच्छी बातें सोचनी चाहिएं, अच्छे वचन बोलने चाहिएं और अच्छे काम करने चाहिएं।

अहिंसा आत्मा का गुण है और यह शूरवीर पुरुष का आभूषण है। सब धर्मों में मुख्य होने के कारण ही "अहिंसा परमो धर्मः" कहा गया है।

संसार में रह कर हमारे द्वारा दूसरे जीवों की हत्या भी होनी अनिवार्य है इस लिए गृहस्थ हिंसा का पूर्ण त्याग नहीं कर सकता। घर के काम धन्धे, व्यापार, खेती आदि में छोटे जीवों की हत्या होती है। परन्तु जो आदमी यत्न कर के कम से कम हिंसा करता है और जिस के मन में हिंसा करने की भावना नहीं होती वह ऐसी हत्या होने पर भी हिंसा के पाप का भागी नहीं होता। गृहस्थ अपनी व दूसरों की रक्षा के लिए हथियार भी उठाते हैं, अन्यायियों को दण्ड भी देते हैं तब भी उन को हिंसा का पाप नहीं लगता।

स्थावर यानी एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा से तो

गृहस्थ और संन्यासी कोई भी नहीं वच सकता। हम सांस लेते हैं, पानी पीते हैं, चलते-फिरते हैं, भोजन करते हैं तो ऐसे अनेक नन्हे कीटाणुओं की हत्या होती ही है। परन्तु त्रस यानी दो-इन्द्री से पंचेन्द्रिय जीवों तक की हिंसा के भी चार भेद हैं।

(१) संकल्पी हिंसा—इरादा कर के, दुष्ट भावना से या झूठा धर्म समझ कर (वलि इत्यादि) पशु वध करना, शिकार खेलना, यह सब संकल्पी हिंसा है। गृहस्थ को केवल इसी हिंसा का त्याग करना चाहिए। आगे लिखी तीन तरह की हिंसा से गृहस्थ वच नहीं सकता इस लिए उस को उन का त्याग करने की आवश्यकता नहीं है।

(२) उद्योगी हिंसा—खेती, व्यापार, कल-कारखाने आदि के चलाने में जो हिंसा अपने आप हो जाती है उसे गृहस्थ कर सकता है।

(३) विरोधी हिंसा—शत्रु से लड़ने में, अन्यायी को दण्ड देने में जो हिंसा होती है उसे विरोधी हिंसा कहते हैं। गृहस्थ का कर्त्तव्य है कि रण में शत्रु सामने हो, अथवा कोई देश की उन्नति में बाधक हो, जो अन्याय पर तुला हो, उस के विरुद्ध अपनी और देश की रक्षा के लिए वीरता से शस्त्र उठाए। परन्तु दीन

हीन और साधु पर कभी शस्त्र नहीं उठाना चाहिए।

(४) आरम्भी हिंसा—घर गृहस्थी के चलाने में, सफाई करने में, मकान आदि बनवाने में जो हिंसा होती है उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं और गृहस्थ इस हिंसा का भी त्यागी नहीं होता।

हिंसा के इन भेदों को भली भांति समझ लेना चाहिए अन्यथा गलत धारणाओं में पड़ कर आदमी पथ भ्रष्ट हो जाता है। गृहस्थ वीर, तेजस्वी और शूर वीर होता है। वास्तव में तो हिंसक वह है जो अन्याय को चुपचाप सह लेता है क्यों कि उस से अन्याय फैलता है और अहिंसा बढ़ती है। जब कोई शान में अन्धा हो कर दूसरों को सताता है, शिकार खेलता है, देवी-देवताओं के नाम पर प्राणियों का वध करता है तब वह हिंसक कहलाता है।

सच्चा अहिंसक ही वीर, उदार और कर्त्तव्य पालन करने वाला होता है। वही स्वयं सुखी रह कर दूसरों की भलाई करने में सफल होता है।

मेरी भावना

जिसने राग-द्वेष, कामादिक जीते सब जग जान लिया,
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उस को स्वाधीन कहो,
भक्तिभाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो ।।

विषयों की आशा नहिं जिन के, साम्यभाव नित रखते हैं,
निज-पर के हित साधन में जो, निशदिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं ।।

रहे सदा सतसंग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्चा से यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।
नहीं सताऊं किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूं,
परधन, वनिता पर न लुभाऊं, सन्तोषामृत पिया करूं।।

अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं,
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरूं।

रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं,
बने जहां तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूं ॥

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे,
वैर भाव अभिमान छोड़ जग, नित्य नए मंगल गावे ।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञानचरित उन्नति कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें ॥

ईति-भीति व्यापे नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ।
रोग, मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे,
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करे ॥



देश वन्दना

हिन्द के जवान हम

हिन्द के जवान हम, हिन्द की हैं शान हम।
हिन्द के निशान को, बुलन्द हम किए चलें ॥

(१)

प्रबल ज्वालमाल हो, आंधियां कराल हों।
जलधि, गगन, भूमि पर, कलह प्रलय के जाल हों।
किन्तु हम रुकें नहीं, चले चलें, बढ़े चलें ॥ हिन्द० ॥

(२)

हिन्द हेतु जान दें, हिन्द हेतु प्राण दें।
हिन्द हेतु हम सभी, सहर्ष रक्त दान दें।
जय हिन्द, जय हिन्द, बोलते चले चलें ॥ हिन्द० ॥